प्यारे

पांडेय बेचन शर्मा

हिन्दी ADDA

प्यारे

https://www.hindiadda.com/pyare/

उस दिन आखिरी खेवा पार लगाने में मुझे बड़ी देर हो गई थी। मैं आठ बजे रात के बाद अपनी झोंपड़ी में लौटा। मेरी झोंपड़ी झोंपड़ी ही थी राजप्रासाद नहीं। उसमें दो चार लोहे के तसले, मछली पकड़ने का जाल, कछुओं के खोपड़े, डाँड़े और एक टूटी - बिना किसी बिस्तर की - चारपाई मात्र थी। उसे प्रकाशित करने के लिए एक छोटी मिट्टी की डिबरी थी जिसमें मिट्टी का ही स्नेह अपने को जलाया करता था। झोंपड़ी में पहुँचते ही मैं दीपक जलाने के विचार से सलाई की पेटी तलाशने लगा। इतने में बाहर से दो आदमियों की जरा तीव्र फुसफुसाहट सुनाई पड़ी।

'जान पड़ता है झोंपड़ी में कोई नहीं है।'

'पर द्वार तो खुला है।'

'हवा से खुल गया होगा। जरूर इसमें कोई नहीं है। चलो हम लोग उस पेड़ के नीचे बैठकर बातें करें।'

फुसफुसाने वाले, झोंपड़ी से थोड़ी दूर पर खड़े पीपल के वृक्ष की ओर बढ़े। मुझे उनकी इस हिम्मत पर आश्चर्य मालूम हुआ। नगर के लोगों की धारणा थी कि उस पेड़ पर प्रेतों का निवास है अत: रात की बात तो दूर कोई सरेशाम भी उसके नीचे क्या पास से भी गुजरने में डरता था। मगर वे दोनों उसी पेड़ के नीचे जाकर बैठ गए। मैंने मन में कुछ भय का अनुभव किया। ये चोर तो नहीं हैं?

रात अँधेरी - घोर अँधेरी थी। नीले आकाश पर बिखरी हुई तारिकाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानों समुद्र में सीपियाँ चमक रही हैं। मैंने सलाई ढूँढ़कर अपने अँगोछे के कोने में बाँध लिया और बिना दीपक जलाए ही, हाथ में मोटा-सा डंडा लेकर, दबे पाँव उन आदमियों के पीछे जाकर उनकी इच्छा जानने का विचार किया। क्षण भर में मेरा विचार कार्यरूप में परिणत होने लगा।

2

वे दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे -

'मैं प्रचार विभाग में काम कर सकता हूँ।'

'उस विभाग के लिए और भी अनेक लोग हैं।'

'मैं भर्ती का काम भी बड़ी सतर्कता से कर सकता हूँ।'

'इस काम के लिए तुमसे अधिक जानकार और सतर्क आदमी हमारे दल में हैं।'

'मैं, अपने नायक के आज्ञानुसार शस्त्र चलाने का काम भी कर सकता हूँ। देशद्रोहियों या स्वदेश के हत्यारों की हत्या करने से मुझे परहेज न होगा।'

'बेशक यह काम वीरता का है। भीषण भी है। जिम्मेदारी भी इसमें कम नहीं है। फिर भी इसकी अभी आवश्यकता नहीं। आवश्यकता हो भी तो इस काम के करने वाले बहुत हैं।'

'मैं फाँसी पर चढ़ सकता हूँ।'

'हिश! इस काम के लिए जल्दबाजी की जरूरत नहीं। तुम्हें पहले वही करना होगा जो मैंने अभी बतलाया है।'

'क्या? - डाका?'

'जरा धीरे बोलो। पेड़ के पत्ते भी सरकारी गवाह बन सकते हैं। हाँ।'

'डाका? जरा धीरे से परंतु दृढ़स्वर में पहले व्यक्ति ने कहा, 'डाका बड़ा ही नीच कर्म है। बड़ा ही अपमानजनक है!'

'स्वदेशोद्धार के लिए कोई भी कर्म नीच नहीं है। अपने उद्देश्य-सिद्धि के मार्ग में 'अपमान' का स्मरण करना भीरुता है। तुम्हें डाका डालना होगा।'

'नहीं-कदापि नहीं। मुझे क्षमा कीजिए। मैं डाकू होकर आपके दल में नहीं रह सकता। मैं बाह्मण हूँ। मैंने पढ़ा-लिखा भी है। देखता हुआ अंधा नहीं बन सकता।'

'इधर देखो! देश रसातल को जा रहा है। हमारा गौरव विदेशियों की ठोकरों से नष्ट हो रहा है। संसार की नजरों से तो हम गिर ही गए हैं अब उसकी स्मृति भी हमें भुला रही है। इस समय जीवन-मरण का प्रश्न है। ऐसे अवसरों पर साधारण सदाचार का स्मरण करना पाप है, कायरता है।'

'मैंने हजार बार कहा है, फिर भी कहता हूँ मैं मरने से नहीं डरता। पर चोर-डाकुओं की मृत्यु से मैं घृणा करता हूँ। उद्देश्य कितना ही पवित्र हो पर उसे देश, काल और समाज के अनुकूल होना चाहिए। यदि हम डाकू के रूप में पकड़े गए तो कोई हमारे उद्देश्य की प्रशंसा कर हमसे सहानुभूति प्रकट करेगा? कदापि नहीं। सब यही कहेंगे कि 'धन के

लोभ से डाका डाल रहा था।' इसे आप साधारण बात समझते हैं। किसी कुलीन मनुष्य का इससे अधिक पतन और क्या हो सकता है?'

'ठीक है। तब यह क्यों नहीं कहते कि तुम्हारा स्वदेश-प्रेम और कुछ नहीं 'स्वार्थ प्रेम' है। तुम वही काम कर सकते हो जिससे वाहवाही मिले - देश का भला हो या बुरा, तुम देश के नेता बनना चाहते हो, चारों ओर अपनी प्रशंसा सुनना चाहते हो, अखबारों में 'आत्म चरित्र' पढ़ना चाहते हो और चाहते हो लोगों के कंधों पर, मालाओं से मंडित होकर, चलना! पर भाई! विश्वास रखो, उपर्युक्त बातों से त्याग की परिभाषा पूर्ण नहीं होती। पूर्णता तो दूर उक्त बातों में त्याग का नाम तक नहीं है। यह तो खासा व्यापार है। तुमने देश की सेवा की और देश ने तुम्हें नेता बना दिया। जो काम करोड़ों रुपयों से नहीं होता वह जरा देशभक्ति की दुहाई देने से हो गया। यह त्याग है?'

पहले व्यक्ति ने कुछ कहना चाहा पर दूसरे की बातों का तार न टूटा...

'उन हजारों तपस्वियों की ओर देखो जिन्होंने इतिहास की अणुमात्र भी चिंता न कर, समाज के तमाशबीनों की ओर उपेक्षा से देखकर, अपने मानापमान को एकदम भुलकर - अपने आप को विपक्षियों के हाथों में हलाल होने के लिए सौंप दिया और अपने उद्देश्य के लिए, प्यारे देश के लिए वे, नारकीय जेलखानों में अमानुषिक सजाएँ भोगकर विविध प्रकार से अपमानित होकर, अस्थिमात्र के पुतले बनकर संसार से उठ गए और उठे जा रहे हैं। क्या वे स्वार्थी हैं? पतित हैं? जघन्य हैं? क्या वे किसी गोखले, तिलक, मालवीय, गाँधी, मैकस्विनी, मैजिनी, गैरीवाल्डी, लेनिन, जगलुल और कमाल से कम हैं?'

पहले व्यक्ति ने पुन: कुछ कहना चाहा पर व्यर्थ! दूसरे की जबान न रुकी - 'मूर्ख प्रेमी! प्रेम का पुरस्कार लेकर अपने को 'महात्मा' सिद्ध करना चाहता है? 'त्याग' और 'पुरस्कार' में भी कोई संबंध कभी हुआ है? पहले उस प्रेमी को देख जिसने अपने प्रेमजन्य त्याग का पुरस्कार प्रियतम से मिलन, आलिंगन और चुंबन के रूप में वसूल कर लिया हो और फिर, संसार की नजरों में, उस अभागे प्रेमी की ओर देख जिसकी 'डायरी' में मर जाने पर भी 'मिलन' लिखा ही न हो, जिनके ओठों ने विरहाग्नि से झुलस जाने पर भी प्रियतम-अधर-सुधा रस के दर्शन न पाए हों और जिनके हृदय ने टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी अपने प्यारे के आलिंगन का आनंद न पाया हो! उस समय तुझे मालूम होगा पवित्रता कहाँ है, मनुष्यता का निवासस्थान कहाँ है और कहाँ है सच्चा त्याग?'

उपर्युक्त बातें सुनकर मुझे किसी बात का ध्यान आ गया। मैंने एक ठंडी साँस ली। साथ ही पहले व्यक्ति की लंबी साँस भी मुझे स्पष्ट सुनाई पड़ी। दूसरे व्यक्ति ने आगे कहा,

'तुम जाओ भैया, ईश्वर तुम्हारा मंगल करे। तुम अपने को देश से बड़ा समझते हो, समाज को देश से बड़ा समझते हो। तुम देश के नाम पर वही काम कर सकते हो जिसमें असफलता होने पर भी इतिहास तुम्हें अपने हृदय में स्थान दे। तुम देश के लिए और सब छोड़ सकते हो परंतु अपनी इज्जत नहीं कम करा सकते। तुम पूरे त्यागी नहीं हो सकते। हमें पूरे त्यागियों की आवश्यकता है...।'

बीच ही में रोककर पहले व्यक्ति ने कहा -

'बस कीजिए। क्षमा कीजिए। सचमुच मैं ही गलत रास्ते पर था। मैं ही भूल करता था। क्षमा कीजिए। मैं डाका डालूँगा। आज्ञा हो, कब? कहाँ?'

3

पहले व्यक्ति की बातें सुनकर दूसरे ने, जो नायक जान पड़ता था, कहा -

'खूब समझ लो। हमारे रास्ते में बाधाएँ हैं, विपत्तियाँ हैं, काँटे हैं पर, संबल कुछ भी नहीं है। चलते हो हमारे साथ?'

'हाँ! चलूँगा।'

'मानापमान का ध्यान छोड़कर?'

'हाँ।'

'खूब सोच लो। पीछे विचलित होने से तुम्हारा कुछ अमंगल हो सकता है। भाई शत्रु बन सकते हैं।'

'खूब समझ लिया है। अब आज्ञा हो।'

'अच्छा आओ! पहले भगवती भागीरथी को साक्षी रखकर शपथ लो।'

दोनों हाथों में हाथ दिए पुण्य-सलिला भगवती जाह्नवी की ओर बढ़े। क्षणभर जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह, मैं दोनों व्यक्तियों की बातों पर विचार करता रहा। अंत में कुछ सोचकर तेजी से उनकी ओर झपटा।

शपथ खाने के लिए हाथ में ली हुई तलवार अभी पहले व्यक्ति के हाथ में ही थी, गीता की छोटी-सी पोथी भी अभी पाकेट में नहीं गई थी, अभी शपथ के अंतिम शब्द - 'मैं जन्मभूमि के लिए सब कुछ करने और सहने को तैयार हूँ।' गंगा की तरंगों में गूँज ही रहे थे कि मैंने उनके पीछे खड़ा होकर एक दियासलाई जला दी। अंधकार का हृदय फट गया और उसमें से दो तस्वीरें निकलकर मेरी ओर आश्चर्यमय क्रोध से देखने लगीं। उनमें एक व्यक्ति जो शपथ ले रहा था। सोलह-सत्रह वर्षों का सुंदर नवयुवक था। उसका लंबा कद, गठीला शरीर, गोराबदन और कमलनेत्र देखने लायक थे। दूसरे व्यक्ति की अवस्था तीस-पैंतीस से कम न थी। उसके मुख पर तेज, गंभीरता, भयंकरता और मनुष्यता का एक अपूर्व सम्मिश्रण दिखाई पड़ता था। मैं अभी उनकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर निहार ही रहा था कि वे मेरे ऊपर शेर की तरह झपटे। क्षणभर में एक सात नली पिस्तौल और एक भयंकर धार वाली तलवार मेरे सिर पर नाचने लगी!

दूसरे व्यक्ति ने क्रोध से पूछा -

'तू कौन है?'

'एक गरीब मल्लाह।'

'झूठ! झूठ बोलेगा तो गोली मार दूँगा। सच बता तू कौन है? कबसे हमारे पीछे है? और क्यों है?'

'झूठ नहीं कहता भाई, मैं एक गरीब मल्लाह ही हूँ। प्राय: एक घंटे से आपकी बातें सुन रहा था।'

'एक घंटे से?' जरा आश्चर्य से प्रथम व्यक्ति ने पूछा, 'तो उस पेड़ के नीचे की हमारी सब बातें भी तुमने सुनी होंगी?'

'हाँ सुनी हैं। पर उसके लिए चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। आप थोड़ा कष्ट उठाकर पहले मेरी कहानी सुन लें फिर आपकी चिंता दूर हो जाएगी। मैं शत्रु नहीं, मित्र हूँ।'

4

मेरी कहानी इस प्रकार प्रारंभ हुई -

'आज से आठ मास पूर्व मेरे परिवार में तीन प्राणी थे। मैं, मेरे वृद्ध पिता और मेरी युवती स्त्री। उस समय तक मैं स्थानीय सरकारी स्कूल की नवीं श्रेणी में पढ़ रहा था। मेरे पिता को मेरी पढ़ाई की चिंता थी। वे मुझे पुलिस इंस्पेक्टर के रूप में देखना चाहते थे। एक दिन स्कूल से लौटने पर मैंने देखा, मेरे पिता बेहोश पड़े थे, मालूम पड़ता था उन्हें किसी ने भरपेट मारा था, और मेरी स्त्री घर में नहीं थी। दरियाफ्त करने पर आसपास के मल्लाहों ने बताया कि कुछ सिपाही उसे थाने में पकड़ ले गए हैं। लोगों ने इशारतन मुझे यह भी बताया कि सिपाहियों की इच्छा बुरी जान पड़ती थी।'

'सिपाहियों की बुरी इच्छा! मेरी स्त्री के प्रति!! मैं इस बात को सुन भी न सका। बेतहाशा दौड़ता हुआ थाने पर गया। उस समय संध्या होने में थोड़ी देर थी। थाने के फाटक पर एक सिपाही खड़ा था।' मैंने पूछा-

'यहाँ मेरी स्त्री आई है भाई?'

'स्त्री? तेरी? तू कौन है?'

'मेरा नाम दुक्खी मल्लाह है। मेरी स्त्री को कुछ सिपाही थाने पर लाए हैं।'

इसी समय हवालात के भीतर से करुण चीत्कार सुनाई पड़ा, 'छोड़ दो, मुझे छोड़ दो।'

मैंने कहा, 'सुनो, वह बोल रही है। उसने क्या अपराध किया है जो तुम उसे यहाँ पकड़ लाए हो? मुझे भीतर जाने दो।'

सिपाही ने कहा, 'आगे भाग! मारे डंडों के ठीक कर दूँगा। उसने कोई कसूर किया होगा तभी तो यहाँ लाई गई है। जा, उसे हमलोग तेरे घर पर पहुँचा देंगे। अभी थानेदार साहब उसका बयान ले रहे हैं।'

भीतर से पुनः आवाज आई -

'मैं मर जाऊँगी, मर जाऊँगी। एक स्त्री की इज्जत...। तीन राक्षस, तीन हत्यारे, तीन डाकू!'

'मैं अधिक न सुन सका। सिपाही को एक धक्का देकर भीतर घुस गया। पर उससे क्या हो सकता था। हवालात के भीतर बंद कर थानेदार के साथ दो जमींदार मेरी प्राणप्यारी का... कर रहे थे! मैं पहाड़ की तरह हवालात के द्वार पर टूट पड़ा, पर उसने वज्र का रूप धारण कर लिया था, उसकी छाती मेरी करुणा से न फटी, वह नहीं खुला! मैं बेहोश होकर गिर पड़ा!!'

'होश आने पर मैंने अपने को उसी हवालात में बंद पाया। प्यारी का कहीं पता नहीं था। हाँ उस स्थान पर कई जगह रक्त के छींटे थे। इसके बाद पुलिस पर आक्रमण करने के अपराध में मेरे ऊपर मुकदमा चला। मैंने हजार सफाई दी हजार दफा अपनी स्त्री के अपमान की कथा सुनाई पर वह न्याय के कानों तक न पहुँच सकी। मुझे छह महीने की सख्त सजा हुई। जिस समय मैं अपना जेल-जीवन भोगने के लिए कारागार भेजा जा रहा था उस समय मेरे पिता कचहरी के फाटक पर खड़े होकर अपने असमर्थ आँसुओं को बहा रहे थे।' मैंने उनसे पूछा -

'बाबूजी, वह कहाँ है?'

'मरन सेज पर! बेटा वह जीती न रहेगी।'

इससे अधिक बात न हो सकी। मैं जेलखाने की ओर जबरदस्ती बढ़ाया गया। सजा समाप्त कर लौटने पर मुझे मामूल हुआ कि मेरे जेल जाने के पंद्रह दिनों बाद मेरी स्त्री मर गई थी और उसकी मृत्यु के एक सप्ताह बाद मेरे असमर्थ वृद्ध बाप का भी देहांत हो गया था! अब - अब मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की आग जल रही है। जिस राज्य में प्रजा पर इस तरह अन्याय हो...।

मेरी बातें सुनकर अपनी आँखों को पोंछते हुए दूसरे व्यक्ति ने कहा -

'बेशक तुम दु:खी हो। हम तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम हमारे भाई हो। तुम्हारी अवस्था कितनी है?'

'अट्ठारह वर्ष।'

'तुम्हारे परिवार में कोई और है? बूढ़ी विधवा माँ तो नहीं है?'

'नहीं भाई! मुझ अभागे का साथी कोई भी नहीं है।'

'ठीक। हम तुम्हें अपने दल में मिला लेंगे। इस समय तुम अपनी झोंपड़ी में विश्राम करो। शेष बातें कल।'

5

दूसरे दिन मैं अपनी छोटी डोंगी पर जाल रख मछलियाँ फँसाने जा ही रहा था कि वह आए। उन्होंने धीरे से पूछा -

'पहचाना?'

'हाँ। आप ही ने कल शपथ ली थी। वह नायक जी कहाँ हैं?'

'बताता हूँ। नाव पर बातें होंगी।'

वह बैठ गए। मैं डांड़े चलाना आरंभ किया। उफ उनके मुख पर विचित्र आकर्षण था, अद्‌यितीय तेज था। मैं नाव को एकांत की ओर खींच रहा था और वे मेरे मन-पोत को अपनी ओर खींच रहे थे। पुरुष में इतना आकर्षण मैंने कभी नहीं देखा था। चारों ओर शून्य देखकर उन्होंने कहा -

'तुम्हें नौकरी करनी होगी।'

'किसकी?'

'पहले बताओ, करोगे?'

आप लोगों की जो-जो आज्ञाएँ होंगी सबका पालन करूँगा? बताइए मुझे किसकी नौकरी करनी होगी।

'मेरी।'

'आपकी? ओहो! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ? आप ब्राह्मण मैं - और मैं... सब प्रकार अति नीच निषाद? मेरे ऐसे भाग्य कहाँ?'

'देखों, हम राष्ट्र के सेवक हैं। राष्ट्र हमारा धर्म है राष्ट्र हमारी जाति है और राष्ट्र ही हमारा स्वर्ग, अपवर्ग सब कुछ है। राष्ट्र का प्रत्येक बच्चा हमारा भाई है। तुम मुझे आप न कहा करो भाई।'

प्रेम गदगद होकर मैंने पूछा -

'तब क्या कहा करूँ?'

'मेरा नाम प्यारे चंद्र है। तुम इसी नाम से मुझे पुकारा करो।'

मैंने कहा, 'प्यारे।'

'हाँ।'

प्यारे के पिता, नगर के प्रसिद्ध वकीलों में से थे। उनके विचार भी बहुत स्वतंत्र थे। उन्होंने मुझे - प्यारे की सिफारिश पर घर के साधारण कामों के लिए पंद्रह रुपए मासिक पर नौकर रख लिया। प्यारे की नौकरी को 'नौकरी' कहने से नरक निवासिनी नौकरी की प्रतिष्ठा बढ़ जाएगी और घट जाएगी स्वर्ग की मर्यादा। प्यारे मुझे अपने भाई की तरह मानते थे। मेरे दुखों के कारण उनकी आँखें हमेशा अश्रुपूर्ण रहा करती थीं। वह प्राय: यही कहा करते, 'दुखी! तुम्हारे ऐसे न जाने कितने पीड़ित इस अभागे देश में होंगे। उन्हीं की रक्षा करना हमारा उद्देश्य है।' वह चौबीस घंटों में चार बार, दस बार, बीस और पचास बार मुझसे मिलते। मुझे सांन्त्वना देते, मेरे हृदय को अपनी सहानुभूति से आनंदमय करते और मेरे दु:खों को भुलवाने की चेष्टा करते। उनकी एकांत कोठरी में मैं नौकरों की तरह सिर झुकाकर फर्श के कोने में नहीं बैठ सकता था वह मुझे जबरदस्ती अपनी बगल में पलंग पर बैठाते। मेरी कोठरी में मेरे फटे-पुराने बिस्तरे पर बैठकर मुस्कराने में उन्हें लेशमात्र भी संकोच न होता। कहें तो, उनका व्यवहार सगे भाई से भी बढ़कर था।

जब तक वे मुझसे दूर रहते तब तक चाहे कितनी भी चिंताएँ आतीं पर उनके आते ही मेरे सुख पर प्रसन्नता नाचने लगती। उन्हें देखते ही मैं अपने पिता, माता और प्रियतमा को भूल जाता। वह मेरे सबकुछ से जान पड़ते। जब वह जलियाँवाला की क्रूर-कथा कहते-कहते रोने लगते तब मुझे ऐसा जान पड़ता मानों 'तरुण भारत' अपनी दासता के नाम पर रो रहा है। जब वह संसार के राष्ट्रों से भारत की तुलना करते-करते उसके पतन पर पश्चाताप करने लगते तब मुझे ऐसा जान पड़ता मानो 'स्वतंत्र भारत' के इतिहास की भूमिका वह स्वयं लिख रहे हैं। वह अक्सर कहा करते, 'दु:खी! वह दिन कब आएगा जब देश का प्रत्येक युवक गुलामी के सर्वनाश के लिए बद्ध परिकर होकर आगे बढ़ेगा?'

6

उस दिन निशासुंदरी ने काली चादर ओढ़कर प्रकृति-प्रांगण में प्रवेश किया था। आकाश ने भी बादलों के काले-कंबल से अपने बदन को ढक रखा था। भगवती भागीरथी भी काले परिधान से छिपी थी और माता वसुंधरा भी। जान पड़ता था कि प्रकृति ने कोई भीषण कार्य करने का विचार किया था। प्यारे ने उस दिन तीसरे पहर मुझसे कहा था, 'तुम अपनी दोनों नौकाओं को लेकर सात बजे शाम को, अपनी झोंपड़ी से थोड़ी दूर पर तैयार रहना। नायक की आज्ञा है। उक्त आज्ञा के पालन के लिए दोनों नौकाएँ प्रस्तुत कर, उस अँधेरी रात में मैं प्यारे और नायक की बाट देख रहा था। ठीक सात बजे, नायक के साथ प्यारे आए और उनके कुछ ही पीछे एक-एक कर बारह

व्यक्ति और आए। सबके आ जाने पर नायक ने छोटी नाव पर पाँच और बड़ी पर दस मनुष्यों को चढ़ने का आदेश दे, शीतलागंज की ओर चलने को कहा। क्षणभर बाद हमारी नौकाएँ गंगा के बीच से शीतलागंज की ओर रवाना हुईं। बादल अधिक घने हो गए, रात अधिक काली हो गई, हवा अधिक वेग से चलने लगी।' नायक ने कहा -

'सावधान!'

साथ ही चौदह कंठों ने 'सावधान!' शब्द को दृढ़ता से कहा। डाँड़ों का चलाना रोक दिया। हम सब नायक के मुख की ओर उस अँधेरे में देखने लगे। उन्होंने कहा -

'आप सब जानते हैं आज क्या करना होगा?'

सब - 'नहीं।'

नायक - 'हम मातृभूमि के उद्धार के लिए आज डाका डालेंगे।'

नायक की बात सुनकर सब मौन रहे। संभवत: गंगा की तरंगें और वायु भी क्षणभर के लिए स्तब्ध हो गईं? नायक ने आगे कहा -

'जिस पर हमें डाका डालना है वह धनी है। धनी होना कोई बड़ा अपराध नहीं है। वह पाजी भी प्रथम श्रेणी का है। अपनी रियाया पर बड़ा अत्याचार करता है असामियों का खून चूस लेता है। पुलिस को रिश्वत देकर अपना रौब कायम किए हुए है। वह भारत की स्वतंत्रता का विरोधी और दासता का समर्थक भी है। सब बातों का हमने भली प्रकार पता लगा लिया है। ऐसे लोगों पर डाका डालने में कोई भी पाप नहीं हो सकता। तिस पर स्वदेश के लिए, स्वराष्ट्र के लिए? किसी देश के किसी व्यक्ति की संपत्ति, राष्ट्र की संपत्ति है।'

सब - 'ठीक है। हम ऐसे व्यक्ति पर डाका डालना पुण्य समझते हैं। हम तैयार हैं।'

नायक - 'किसी को प्राणों का भय हो, तो वह, अभी से अच्छा है, उतर जाए। किसी को पाप का विचार हो तो वह भी हमारा साथ छोड़ सकता है।'

सब - 'नहीं। हम सब दृढ़तापूर्वक तैयार हैं।'

'अपनी-अपनी नकाब पहन लो।'

आज्ञा का पालन हुआ।

'अपने शस्त्रों को हाथ में ले लो।'

सबके हाथों में शस्त्र सुशोभित हो गए। हममें से बारह के पास सात फायर वाली पिस्तौलें थीं और तीन के पास तलवार, छुरे और बर्छे।

'प्रतिज्ञा करो।'

'प्रारंभ कीजिए।'

'मैं जन्मभूमि के उद्धार के लिए, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए, या तो लड़कर विजयी होऊँगा अन्यथा युद्ध में प्राण दे दूँगा।' सबने गरज कर कहा -

'लड़कर विजयी होऊँगा अन्यथा युद्ध में प्राण दे दूँगा।'

शीतलागंज के एक फर्लांग फासले पर हम नीचे उतरे। वहाँ नायक ने मुझसे कहा -

'दुखी! तुम्हें नौकाओं की रक्षा का भार लेना होगा। तुम्हारे पास पिस्तौल...। नहीं तुम्हारे पास कहाँ से होगी। तुम यह - मेरा पिस्तौल - लो। जो कोई भी विपक्षी बन कर नौका पर अधिकार करने आए उसका स्वागत इसी से करना।'

यद्यपि मेरी इच्छा प्यारे का साथ छोड़ने की नहीं थी, यद्यपि मुझे भी युद्ध करने का शौक था, फिर भी नायक की आज्ञा माननी पड़ी। मैंने उनके हाथ से पिस्तौल लेकर माथे से लगाते हुए, नायक की आज्ञा पालन की स्वीकृति दी। नायक के पीछे दल गाँव की ओर रवाना हुआ। शायद जानबूझकर उस समय प्यारे सबके पीछे थे मुझे अकेला छोड़ने के पूर्व मेरे पास आकर वह कहने लगे -

'दुखी।'

'प्यारे।'

'घबराओ नहीं?'

'नहीं प्यारे, पर तुम्हें अकेले छोड़ते...।'

'दुर! इसकी चिंता क्यों करते हो? हमारे साथ चौदह वीरों का दल है। प्यारे चले गए। मैं मुग्ध दृष्टि से उनकी गति को देखता ही रह गया।'

आधी रात से अधिक बीत गई थी। नौका संचालन की क्लांति रात्रि की निस्तब्धता और शीत के समीरण ने मुझे बरबस निद्रा देवी की गोद में ढकेल दिया। मैं नाव पर बैठे ही बैठे खर्राटें लेने लगा। मैंने स्वप्न में देखा प्यारे सुंदर स्वच्छ वस्त्रों से सुसज्जित होकर मेरे सम्मुख खड़ा था। उस समय उसका सौंदर्य अद्‌वितीय हो गया था, उसके मुख पर का तेज देवताओं को लज्जित करता था। प्यारे ने कहा -

'दुखी!'

मैंने प्यारे का हाथ पकड़कर प्यारे से पूछा - 'अरे तुम अकेले कैसे? नायक कहाँ है? तुम्हें सफलता नहीं मिली क्या?'

सफलता मिली क्यों नहीं दुखी मैंने उसे अपने प्राणों के मूल्य पर खरीदा है।

'क्या प्यारे?'

'मैं जाता हूँ।'

'कहाँ प्यारे? इस बार तुम्हें अकेले न जाने दूँगा। बोलो कहाँ चलोगे?'

'तुम मेरे साथ नहीं चल सकते दुखी! जहाँ मुझे जाना है वहाँ परतंत्रता का कष्ट नहीं। कोई गुलाम नहीं, कोई किसी का शत्रु नहीं। वहाँ सब देवता ही हैं कोई राक्षस नहीं, हत्यारा नहीं। वहाँ साम्राज्यवाद का प्लेग नहीं है, राजतंत्र का प्रेत नहीं है - वहाँ सब मुक्त हैं।'

'साफ बताओ कहाँ जाना है? मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं?'

'मुझे जहाँ जाना है, वहाँ भगवान बुद्‌ध हैं, महात्मा ईसा हैं, महाप्रभु चैतन्य हैं, राणा प्रताप हैं, गुरु गोविंद सिंह हैं। शिवाजी हैं, नेपोलियन हैं। वहाँ पर, कोरियन-रक्त के प्यासे अपने को बौद्‌ध कहने वाले जापानी नहीं हैं। वहाँ पर दानवता के समर्थक ईसा के भेड़िए नहीं हैं। दुखी, एक बार हृदय से मिल लो। तुम मेरे प्यारे हो - मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मुझे जाने दो।'

इतना कह प्यारे मेरे हृदय से चिपक गए और क्षणभर बाद आकाश में उड़ने लगे। मैं 'प्यारे! प्यारे!! जरा सुन लो - प्यारे!' चिल्लाता ही रह गया! उसी समय पिस्तौल की आवाज सुनाई पड़ी। मेरी निद्रा टूट गई! मैं सतर्क होकर गाँव की ओर देखने लगा।

आधे घंटे तक किसी की कोई आहट न मिली। इसके बाद कुछ लोग नाव की तरफ झपटे आते दिखाई पड़े। अभी वे कुछ दूर ही थे कि मैंने ललकारा -

'कौन आ रहा है?'

उत्तर मिला - '**13** अप्रैल **1919**'

मैंने पिस्तौल को नीचे झुकाकर सांकेतिक उत्तर से उन्हें नाव की ओर बुलाया। वह उत्तर भा - '1857'

देखते-देखते तेरह आदमी अनेक गठरियाँ ओर संदूक लिए नाव के पास आ गए। तेरह ही क्यों? चौदहवाँ कहाँ छूट गया? क्या गिरफ्तार हो गया? या काम आ गया? मैंने नायक से पूछा। नायक ने कहा -

'नौका जल्दी खेओ! गाँव के लोग जाग गए हैं। संभवत: पीछा करेंगे।'

मैंने व्यग्र होकर पूछा -

'प्यारे कहाँ हैं?'

तुम्हारे प्यारे हमारे साथ हैं। उन्हीं की कृपा से हमें सफलता मिली है। पहले भागो सब कथा सुनाऊँगा।

लाचार, मैं नाव लेकर जिधर से आया था उधर ही तेजी से चला।

8

बहुत दूर निकल आने पर नायक ने डाके की कथा इस प्रकार आरंभ की -

'जिस समय हमारा दल उस धनिक के घर पर पहुँचा उस समय गाँव का गाँव घोर निद्रा में था। बिना किसी कठिनता के हमने धनिक के नौकर-चाकरों और परिवार के प्राणियों को बाँध लिया। और सब तो डर से सन्नाटे में आ गए पर वह धनिक मानता ही न था। रह-रहकर चिल्लाने और बंधनमुक्त होने की व्यर्थ चेष्टा करता था। अत: हममें से एक उसके मस्तक के सम्मुख पिस्तौल का मुखकर, उससे थोड़ी दूर पर खड़ा हो गया। और लोग रुपए, जवाहिरात और बहुमूल्य सामानों को एकत्र करने लगे। इतने में पिस्तौल की आवाज सुनाई पड़ी। आवाज उस कोठरी में से आई थी जिसमें धनिक और हमारा एक साथी थे। बात क्या है इसका पता लगाने के लिए जब मैं उस

कोठरी में पहुँचा तब क्या देखा कि हमारे ही दल का एक नकाबपोश पृथ्वी पर तड़प रहा था और दूसरा - जो धनिक की निगरानी पर था - हक्का-बक्का-सा होकर उसे सँभाल रहा था। तड़पनेवाला नकाबपोश -दु:खी! तुम्हारा भाई प्यारे था।'

मैंने कातर स्वर से प्रश्न किया, 'तो - क्या प्यारे को हमारे ही किसी व्यक्ति ने मार डाला?'

'प्यारे, बहुत जल्दी में एक ओर से दूसरी ओर जा रहा था उसी समय, गलती से वह उस आदमी की पिस्तौल से टकरा गया जो धनिक की निगरानी कर रहा था। एकाएक घोड़े के दब जाने से गोली छूट गई। प्यारे की कमर की हड्डी में भयंकर घाव हो गया!

फिर हमने अपने हाथ से अपना माथा पीटकर कहा कि अब हम लोगों को सफलता नहीं मिल सकती। प्यारे खुद चलकर यहाँ तब आ नहीं सकता और उसे यहाँ तक लाना असंभव था। हमारा दल या तो किसी तरह प्यारे को यहाँ पर ढोकर लाता या अत्यंत परिश्रम से प्राप्त उस धन को।'

'तो आपने प्यारे को वहीं छोड़ दिया?'

'नहीं। मेरे लिए वैसा करना असंभव था। मैंने प्यारे से कहा कि तुम्हें ही लेकर हम भाग चलते हैं। तुम्हारे पकड़े जाने से सब भंडाफोड़ हो जाएगा। ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी कि हमारी सामने आई हुई थाली छिन जाए। पर प्यारे ने कुछ और ही उत्तर दिया। उसने कहा, नायकजी, असफल होकर आप नहीं लौट सकते। हमने प्रतिज्ञा की है कि या तो मरेंगे या सफलता प्राप्त करेंगे। अस्तु, मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण आपको असफलता मिले। आप एक काम करें। मैंने पूछा क्या? उसने उत्तर दिया - 'आप मेरा सिर काटकर लेते जाएँ खाली शरीर को कोई क्या पहचानेगा। स्वदेश के लिए अपना सिर देकर मैं अपने को धन्य समझूँगा। आप यही करें।' मैंने कहा असंभव! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। तुम वीर हो तुम्हें इतने सस्ते पर कदापि न बेचूँगा।'

इतना कह मैंने, माल छोड़कर फौरन सबको अपने पास आने का संकेत बिगुल से किया। प्यारे, 'मुझे मार डालिए। मेरे कारण असफल मत बनिए। मेरा सिर काट लीजिए।' आदि कहता ही रह गया। मैंने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। सबके एकत्र हो जाने पर मैं प्यारे को ले चलने की व्यवस्था कर ही रहा था कि उसने जोर से पुकार कर कहा - 'यह असंभव है नायकजी! मेरे कारण पराजय नहीं हो सकती। देखिए!' मैंने प्यारे की ओर मुड़कर देखा। वह तड़प रहा था। उसने अपने हाथ से अपना सिर धड़ से अलगकर अपना काम पूरा किया। उसकी वह वीरता देखकर मैं उसकी

छाती से चिपटकर उसकी पीठ ठोंकने लगा पर वह तो शव मात्र था! दुखी! हमने अनेक वीरों को देखा है पर प्यारे की तरह बहादुर को देखने का सौभाग्य मुझे आज ही प्राप्त हुआ। उसी की वीरता से आज हम प्राय: साठ सहस्त्र रुपए का माल स्वदेशोद्धार के लिए लूट लाए हैं।'

नायक ने गठरी से प्यारे का कटा सिर निकालकर मेरे हाथों पर रख दिया। और मैंने? विक्षिप्तों की तरह उस शून्य निशा में, गंगा की गोद में - हजारों बार 'प्यारे', 'प्यारे' पुकारकर उस कटे सिर को हृदय से, मस्तक से, आँखों से लगाया, चूमा-चाटा, ठठाकर हँसा, कातरता से रोया, करुण-कंठ से कुछ गाया, नाचा, कूदा! मैं अपने आपको भूलकर प्यारे के लिए पागल हो गया!

जब नायक को पूर्ण निश्चय हो गया कि मैं पागल हो गया तब उन्होंने एक बात बताकर मुझे अपने दल से अलग कर दिया। उन्होंने कहा -

'दुखी, मरते समय प्यारे ने कहा था कि दुखी से कह देना कि वह अपने दल का पता भूलकर भी किसी को न दे। नहीं तो मैं उसे विश्वासघातक और देशद्रोही समझकर प्यार करना छोड़ दूँगा।'

मैंने कहा, 'नायकजी, प्यारे ने कहा है? सच कहते हैं? हाँ, हाँ, उन्होंने कहा होगा। एक बार मुझसे और भी कहा था। अच्छा मैं किसी से न कहूँगा नायकजी। पर, सुनिए इस बार यदि कहीं डाका डालने चलना हो तो मुझे भी साथ ले चलिएगा। मैं भी प्यारे की तरह अपना सिर आपके चरणों में, स्वदेश के लिए समर्पित करना चाहता हूँ।'

नायक ने कहा, 'अच्छा।'

उपर्युक्त घटनाओं के बाद मेरा नित्यनेम क्या था, सो भी सुनिए। मैं रोज सायंकाल उसी नौका को खेकर, जिस पर उस दिन प्यारे को ले गया था। शीतलागंज के उसी घाट पर जाता ओर प्यारे की पथ प्रतीक्षा करता। जब वे बहुत देर लगाकर भी न आते तब रो-रोकर पुकारता, 'प्यारे!' उस समय दशो दिशाएँ मुँह चिढ़ाकर कहतीं, 'प्यारे!' ऊपर से आकाश कहता, 'प्यारे!' नाचती हुई तरंगें कहतीं, 'प्यारे!' काली या उजली रात कहती, 'प्यारे!' मानों सब प्यारे को प्यार करते थे सब उसके लिए दुखी थे। अंत में पुलिस ने संदेह में मुझे गिरफ्तार कर लिया। इसका विश्वास रखिए उसने मुझे दु:ख भी बहुत दिए पर नीचे की अदालत और पुलिसवालों को मैंने एक बात भी नहीं बतलाई। हाँ जज के सामने जाने पर मैंने नीचे लिखा बयान दिया। मैंने कहा -

'संसार के बली रोज ही दुर्बलों को लूटते हैं, उन पर डाके डालते हैं पर उन्हें कोई माई का लाल नहीं पूछता! क्लाइव कौन था? वारेन हेस्टिंग्स कौन था? डलहौजी कौन था? क्या ये जबरदस्त डाकू नहीं थे? इन्होंने तो मेरे प्यारे का सर्वस्व छीन लिया था। उसी के उद्धार के लिए ही तो मेरे प्यारे डाकू बने और अपने प्राणों को खो बैठे। मैं कहता हूँ, मेरे प्यारे के हत्यारों इन क्लाइव हेस्टिंग्स और डलहौजी के समर्थकों पर कोई विचारक अपनी आज्ञा क्यों नहीं चलाता? इन्हें प्राणदंड क्यों नहीं देता? क्योंकि वे बली हैं? राक्षसों की तरह बली हैं? तब यह न्याय का ढकोसला कैसा? सीधे से लोगों को पीस डालो! हमारे देश में आग लगा दो!! हमारे भाइयों को एकदम मार डालो!!! फिर यह न्याय का ढकोसला कैसा?'

प्रमाण थे या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर मुझे आजन्म द्वीपांतरवास की सजा मिली! किसी की इच्छा हो तो आकर देख जाए मैं आजतक कु-प्रसिद्ध कालेपानी के कारागार में बैलों का काम करता हूँ। गरी का तेल निकालता हूँ। आजतक प्यारे की स्मृति, मेरे जीवन को धन्य बनाया करती है और आज तक मैं रोज-रात-दिन - 'प्यारे! प्यारे!!' चिल्लाया करता हूँ!

मेरे लिए प्राणदंड नहीं था**?** मेरे लिए मृत्यु नहीं थी**??**

https://www.hindiadda.com/pyare/